# भारतीयता एवं सामाजिक समरसता के अग्रदूत : श्रीमंत शंकरदेव

डॉ. सुनील कुमार शॉ

भारत की पुण्य भूमि के लिए शंकरदेव नायक एवं युग पुरुष हैं। महापुरुष शंकरदेव ने तत्कालीन असम में घोर अंधकार को दूर करते हुए प्रत्येक असमिया व्यक्ति के हृदय में भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित की। इनकी रचनाओं ने कला, संस्कृति, साहित्य, समाज चेतना, धार्मिक आस्था आदि सभी क्षेत्रों में एक नयी दिशा एवं दृष्टि प्रदान की। उनकी रचनाएं केवल धर्म ग्रंथ ही नहीं हैं वे समाज, संस्कृति एवं साहित्य के सभी क्षेत्रों को स्पर्श करती हैं। जिस भारत राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की कल्पना आज हम करते हैं उसकी कल्पना कई सौ वर्ष पहले ही श्रीमंत शंकरदेव ने अपनी रचनाओं में कर दी थी। शंकरदेव स्वयं लिखते हैं।

"भारत वरिष मनुष्य शरीर कलीयुग हरिनाम।

चारीरो संयोग कत पुण्ये फाईल करा तरि बार काम ॥

(अर्थातः भक्तों हरि नाम मनुष्य मात्र को इस जग से तार देता है। विशेष बात यह है कि हमें भारत वरिष (भारतवर्ष) में जन्म मिला और वह भी इस कलिकाल में) "[1]

मध्यकाल के वैष्णव भक्ति आंदोलन के संदर्भ में मानवता के समर्थक के रूप में महापुरुष शंकरदेव का एक विशेष स्थान है। इस सुंदर धरा के अपार सौंदर्य को मानवता एवं राष्ट्रीयता के अग्रदूत के रूप में उन्होंने अथक परिश्रम किया। तुच्छ मानसिकता की परिधि से लोगों को बाहर निकालकर उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया। मानव जगत के कल्याण के लिए उन्होंने अनेक यत्न किए हैं। मनुष्य के हृदय में निम्न कोटि के सपनों को संस्कारित कर आध्यात्मिक शक्ति से उसमें भक्ति भाव जगाने के लिए उन्होंने कई महत्वपूर्ण कार्य किये जो आज भी हमारे समाज में मौजूद हैं। नाम की महिमा को उनके साहित्य एवं भक्ति मार्ग में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हरि नाम की डोर से समाज को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है, हरि नाम की अमृत धारा से इस जीवन में पारमार्थिक सुख की उपलब्धि की जा सकती है, इसी शाश्वत सत्य के आधार पर उन्होंने मनुष्य के लिए, समाज के लिए बहुत सारी कल्याणकारी रचनाओं की सृष्टि की। सांवरमल जी नामघर के सन्दर्भ में लिखते हैं- "नामघर असम के गाँव गाँव में हैं। ये नामघर या कीर्तनघर ही नहीं, ये तब से आज तक असमिया समाज-व्यवस्था के विशिष्ट उपादान बने हुए हैं। प्रजातन्त्र के सम्यक् विकास के लिए जिस ग्राम पंचायत की परिकल्पना हमरे संविधान में है, उसे आज से पाँच सौ वर्ष पहले ही श्रीमंत शंकरदेव ने नामघर के रूप में स्थापित कर दिया था। इन नामघरों में अविराम रूप से धर्म-प्रचार के साथ-साथ गाँव की नाना समस्याएँ वाद-विवाद सुलझाए जाते हैं, नीति-नियम का निर्धारण होता है। सामाजिक न्याय, कला एवं संस्कृति को साकार करने में नामघरों का द्वितीय स्थान है।"[2]

श्रीमंत शंकरदेव का जन्म असम के नौगाँव जिले की बरदोवा के समीप अलपुखुरी में हुआ। इनकी जन्मतिथि अब भी विवादास्पद है, यद्यपि प्रायः यह 1371 शक मानी जाती है। जन्म के कुछ दिन पश्चात् इनकी माता सत्यसंध्या का निधन हो गया। 21 वर्ष की उम्र में सूर्यवती के साथ इनका विवाह हुआ। मनु कन्या के जन्म के पश्चात् सूर्यवती परलोकगामिनी हुई। शंकरदेव ने 32 वर्ष की उम्र में विरक्त होकर प्रथम तीर्थयात्रा आरम्भ की और उत्तर भारत के समस्त तीर्थों का दर्शन किया। रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी से भी शंकर का साक्षात्कार हुआ था। तीर्थयात्रा से लौटने के पश्चात् शंकरदेव ने 54 वर्ष की उम्र में कालिंदी से विवाह किया। तिरहुतिया ब्राह्मण जगदीश मिश्र ने बरदोवा जाकर शंकरदेव को भागवत सुनाई तथा यह ग्रंथ उन्हें भेंट किया। शंकरदेव ने जगदीश मिश्र के स्वागतार्थ 'महानाट' के अभिनय का आयोजन किया। इसके पूर्व 'चिह्नयात्रा' की प्रशंसा हो चुकी थी। शंकरदेव ने 1438 शक में भुइयाँ राज्य का त्याग कर अहोम राज्य में प्रवेश किया। कर्मकांडी विप्रों ने शंकरदेव के भक्ति प्रचार का घोर विरोध किया। दिहिंगिया राजा से ब्राह्मणों ने प्रार्थना की कि शंकर वेद- विरुद्ध मत का प्रचार कर रहा है। कतिपय प्रश्नोत्तर के पश्चात् राजा ने इन्हें निर्दोष घोषित किया। हाथीधरा कांड के पश्चात् शंकरदेव ने अहोम राज्य को भी छोड़ दिया। पाटबांउसी में 18 वर्ष निवास करके इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। 67 वर्ष की अवस्था में इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। 97 वर्ष की अवस्था में इन्होंने दूसरी बार तीर्थयात्रा आरम्भ की। उन्होंने क्रैबीर के मठ का दर्शन किया तथा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इस यात्रा के पश्चात् वे बरपेटा वापस चले आए। कोच राजा नर नारायण ने शंकरदेव को आमंत्रित किया। कूचबिहार में 1490 शक में वे वैकुंठगामी हुए। अंधकारमय असम में ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल करने के लिए महापुरुष शंकरदेव का जन्म हुआ था। असम में श्रीमंत शंकरदेव का जन्म ऐसे समय में हुआ जब असम का धार्मिक सामाजिक, तथा सांस्कृतिक जीवन दयनीय स्थिति में था। पंद्रहवीं शताब्दी के समय में जब जाति भेद प्रथा अपनी चरम पर थी, ऐसे कठिन समय में महापुरुष शंकरदेव ने इन सभी कुरीतियों से मुक्ति दिला कर समाज के सभी वर्गों को एक ही धारा में समेटने के लिए एक ऐसें धर्म मार्ग को चुना जहाँ सभी वर्ग समुदाय के लोग एक साथ रह एवं प्रभु का नाम ले सकें। इस तरह का प्रयास करना किसी भी साधारण मनुष्य की बात नहीं थी। जिसके अंदर सच्ची एवं कठोर दृढ़ इच्छा शक्ति हो वही ऐसा प्रयास कर सकता है। आज हमारे सामने महापुरुष शंकरदेव के द्वारा किये गए सुधार जीवंत रूप में प्रस्तुत हैं।

समाज में फैली विद्रूपताओं को दूर कर नाम घर की स्थापना का बीड़ा श्रीमंत ने उठाया। तत्कालीन समय में विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा अर्चना, यज्ञ आदि के लिए जीव बलि दी जाती थी, इसका प्रचालन काफी जोरों पर था। श्रीमंत शंकरदेव ने इन आडंबरों का कठोर विरोध किया और इस परंपरा को रोकने का भरपूर प्रयास किया। इस समय शंकरदेव ने इन सब आडंबरों का विरोध करते हुए एकेश्वर की बात कही। यही मानव प्रेम का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण था। 'एक देव, एक सेव, एक बीने नाइ केव'। इसी प्रसंग को श्रीमंत शंकरदेव के शब्दों में स्पष्ट करते हुए सांवरमल सांगानेरिया श्रीमंत शंकरदेव की जीवनी में आगे लिखते हैं- "नामघर को हम प्राचीन ऋषि-मुनियों के आश्रमों जैसा रूप देंगे। ये, हमारी समाज-व्यवस्था को सुधारने का काम भी करेंगे। यहाँ ऊंच-नीच या स्पृश्य-अस्पृश्य किसी प्रकार का जातिभेद नहीं रखा जाएगा। यहाँ हमारे भक्त गाँव के बच्चों को शिक्षा देंगे, समय पर अपने उपलब्ध साधनों से उनकी चिकित्सा भी करेंगे। भक्तों

को नामघर का प्रचार करने के लिए शिक्षित किया जाएगा। यदि हमारा कोई आपसी विवाद होगा तो उसे भी यही बैठकर सुलझाएंगे। यहाँ एक बड़ा कक्ष केवल पुस्तकों के लिए होगा। यहाँ बैठकर नयी रचनाओं को सांचीपात पर लिपिबद्ध करने के साथ कथा- प्रसंग के अनुसार ग्रंथियों पर चित्रकारी भी की जाएगी। पुराने प्राप्य ग्रंथों की सुंदर प्रतिलिपियाँ बनाई जाएँगी। कोई जिज्ञासु चाहे तो वहाँ बैठकर ग्रंथों का वाचन भी कर सकता है।"[3] इस आदर्श के साथ उन्होंने एक ईश्वर की बात कहीं और सरस भक्ति के माध्यम से मानव मुक्ति का द्वार दिखाया। उन्होंने यह भी कहा था कि भक्ति से ही ज्ञान की सृष्टि होती है। ज्ञान ही परमार्थ या ब्रह्मज्ञान है। भक्ति मार्ग को सभी के लिए सुलभ बताया है महापुरुष ने। उन्होंने यह भी कहा कि सबसे सरल मार्ग है, भक्ति का मार्ग। महापुरुष शंकरदेव ने बताया कि समर्पण का भाव ही भक्ति मार्ग का मूल है। भजन- कीर्तन, समर्पण आदि भक्ति के विभिन्न उपायों से भगवान के समक्ष अगर हम अपने लोभ, क्रोध मोह आदि का आत्मसमर्पण कर सकें तो वहीं से हमे स्वर्ग एवं ईश्वर की अनुभूति होगी। इस मिथ्या जगत में सब कुछ नश्वर है। साथ कुछ नहीं जाता है, साथ कुछ अगर जाता है तो वह है प्रभु भक्ति। इस संसार में भक्ति के अलावा कोई धर्म नहीं है।

भकतित परे धर्म नाहि संसारत

चारिओ वेदर जाना एही सार तत्व।

कलित कीर्तने हौवे भकत

आत परे लाभ नाहि लोकत

'नामेसे करिब परम सिद्धि

हरिर नाम जगतरे निधि। (कीर्तन)

श्रीमंत शंकरदेव ने केवल भक्ति का मार्ग चुनकर लोगों को जागरूक ही नहीं किया बल्कि उन्होंने समाज में समरसता लाने का प्रयास किया। उनका यह ध्येय था कि एक ऐसे समाज को निर्माण किया जाय जहाँ सभी वर्गों के लोग एक साथ मिलकर रहें एवं प्रभु के नाम की महिमा को जपें। श्रीमंत के धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रचार के संबंध में लिखा गया है। शंकरदेव केवल आध्यात्मिक और धार्मिक प्रचार में ही व्यस्त नहीं थे, अपितु उन्होंने भेदभावहीन समाज का पुनर्गठन कर सभी स्तर के लोगों की एक सूत्र में पिरोकर वृहद समाज की स्थापना की। यह उनके चिंतन और कार्यान्वयन का ही प्रभाव है कि आज असमिया समाज में कोई छुआछूत या जातिभेद देखने को नहीं मिलता। तभी तो अपने असम प्रवास के समय यह बात जानकार गांधीजी ने अचंभित होते हुए कहा था कि "अस्पृश्यता के जिस कोढ़ को समाज से मिटाने के लिए मैं प्रयासरत हूँ वह पहले से ही श्रीमंत शंकरदेव ने असमिया समाज से मिटा दिया।"[4] समतामूलक समाज की स्थापना का उत्तर ही था जगत की सभ्यता और प्रगति।

श्रीमंत शंकरदेव ने अनेक ईश्वरों की जगह एक ईश्वर की कल्पना का तर्क दिया भक्ति एवं नाम महिमा के माध्यम से सत्य की अनुभूति का पथ उन्होंने प्रशस्त किया। ईश्वर प्राप्ति के लिए उन्होंने बताया कि इसके लिए जरूरी है केवल एक पवित्र मन। सद्भाव और सुविचार इसकी फसल हैं। यहाँ धनी और निर्धन के बीच कोई भेद नहीं है। नं कोई बाहरी दिखावा है और न ही आडंबर। केवल आवश्यकता है एक ईश्वर के प्रति और अकृत्रिम निस्वार्थ भक्ति। यहाँ सामाजिक श्रेणी विभाजन का कोई स्थान नहीं है। निस्वार्थ भक्ति से अपनी राह बना सकता है, वही यहाँ विजेता है और उसी को आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

महापुरुष शंकरदेव प्रगतिशील सोच रखने वाले दूरदर्शी व्यक्तित्व थे उन्होंने अपने प्रभाव से कई क्षेत्रों के सांगनेरियां आदि को अपने विचार से प्रभावित किया एवं एक ईश्वर धर्म के द्वारा भक्ति आंदोलन के माध्यम से समाज में भ्रातृत्वबोध और अपनत्व की भावना जगाई। समाज में व्याप्त ऊंच-नीच की भावना को दूर करते हुए सभी को एक समान भक्ति मार्ग अपनाते हुए मुक्ति का मार्ग दिखाया। अहोम राज्य के बढ़ते प्रभाव को स्पष्ट करते हुए सांवरमल सांगानी लिखते हैं-"आज भारतवर्ष के इस पूर्वोत्तर अंचल के पूर्व में परशुरामकुंड से लेकर पश्चिम में करतीया नदी की सीमा तक अनेक छोटे बड़े राज्य फैल गए हैं। पूर्वी सीमा पर पड़ोसी ब्रह्म देश से आए हुए अहोमो को अपना राज्य स्थापित किए लगभग ढाई सौ वर्ष हो गए। हमारे पूर्वज भी कन्नौज से आकर यहाँ बसे। यहाँ जो भी बाहर से आया उसने अपने आप को यहाँ की मिट्टी में रंग लिया, यहाँ की संस्कृति से समरूप कर लिया। आपके वंशज तो हमारी तरह बाहर से नहीं आए वरन न जाने कितनी ही शताब्दियों से यहीं रहे हैं।"[5] असम की संस्कृति एवं यहाँ की मिट्टी में अलग तरह का अपनापन है जो किसी भी मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह उक्ति केवल असम के लिए ही नहीं पूरे भारतवर्ष के लिए सत्य है कि यहाँ जो भी आए वे यहीं के होकर रह गए। इस प्रसंग पर जयशंकर प्रसाद कि पंक्ति सटीक बैठती है-

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।।

सरल तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।

छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुंकुम सारा ।।

लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे"[6]

महान बांग्ला के कवि गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर भी लिखते हैं कि इस देश में शक, हूण, आर्य, मुगल अंग्रेज आए और सबको इस देश कि मिट्टी ने अपने आप में समाहित कर लिया। गुरुदेव ने भारतवर्ष को महामानवों का समुद्र कहा है। महापुरुष शंकरदेव भी इसी पुण्यभूमि भारतवर्ष की संतान हैं। इस देश की मिट्टी का कर्ज उन्होंने समरसता के माध्यम से उतार दिया। आज उनके द्वारा दिये गए उपदेशों एवं उनके द्वारा दिखाये गए मार्ग को प्रशस्त कर उसका अनुसरण करने की आवश्यकता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर कि कविता 'जागो रे' का एक अंश-

"हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे.

एइ भारते महामानवे सागर तीरे.

जागो रे धीरे.

हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य, हेथाय द्राविड़-छीन.

शक-हूण डीके पठान-मोगल एक देहे होलो लीन.

पश्चिमे आजी खुल आये द्वार

सेथाहते सबे आने उपहार'

दिबे आर निबे, मिलाबे-मिलिबे.

जाबो ना फिरे "[7]

(लिप्यंतरण)

श्रीमंत शंकरदेव के पास जीवन में बहुत-सी विपत्तियाँ आयीं परंतु वे कभी उनके सामने हारे नहीं। उन्होंने सारी समस्याओं का सामना डट कर किया और यही उपदेश उन्होंने अपने शिष्यों को भी दिया। उनके जीवन प्रसंग से जुड़ी हुई कई ऐसी घटनाएँ हैं जो इस तरह की समस्याओं से उनको निपटते हुए दिखलाती हैं। अपनी सूझ-बूझ एवं बुद्धिमता से महापुरुष शंकरदेव ने असम के समाज को एक सूत्र में बांधने का. सफल प्रयास किया। इसी प्रकार एक घटना का उल्लेख है। "राजसभा से शंकरदेव के लिए बुलावा आया। वे समझ गए कि उन्हें क्यों बुलाया गया है। उन्हें आने वाली अनिष्ट का भान हो गया, पर वें विचलित नहीं हुए। उन्हें पता था कि जो भी व्यक्ति कुछ नया करना चाहता है उसे विघ्न-बाधाओं का सामना भी करना ही पड़ता है। पहले भी संत पुरुषों ने कम विपदाओं का सामना नहीं किया। किन्तु विपदा से जीवन में गति भी आती है। विपदा जितनी ही बड़ी होती है, उससे मिलने वाली सिद्धि भी उसी अनुपात में बड़ी होती है। जिसके जीवन में विपदा नहीं उसे सफलता भी कम ही मिलती है।''[8] ऐसी ही विपदा कबीर को, तुलसी दास को बनारस में झेलनी पड़ी थी। फिर भी वे संत कभी हार नहीं माने। यह समस्या केवल तब की नहीं थी आज भी हमारे समाज में सनातन धर्म के प्रचारक साधु-संतों पर तथाकथित लोग हमेशा हमले करते हैं। विगत कुछ वर्षों में देश में साधु-संतों पर हो रहे हमले इस बात के प्रमाण है कि सनातन धर्म एवं संस्कृति आगे बढ़ रही है। समाज की एकता की डोर में बांधने के लिए एक आदर्श का महत्वपूर्ण योगदान है। शंकरदेव के समय असम एवं देश राजनीतिक रूप से अस्थिर था। ऐसी विषम परिस्थितियों के मध्य एकता और भाईचारे से परिपूर्ण एक समाज के गठन की महान इच्छा के साथ शंकरदेव ने नव-वैष्णव आंदोलन की शुरूआत की। उन्होंने अपने इस महान कार्य में कई बाधाओं का सामना किया। नव-वैष्णव आंदोलन के प्रति खुशी-खुशी जिन्होंने समर्थन दिया वह समाज के शोषित और पीड़ित लोग थे।

महापुरुष शंकरदेव ने गीत, संगीत, गायन, वादन, नृत्य, नाटक, अभिनय, चित्रकारी आदि से संबंधित कई पुस्तकों की रचना की। मार्कंडेय पुराण के आधार पर शंकरदेव ने 615 छंदों का हरिश्चंद्र उपाख्यान लिखा। 'भक्तिप्रदीप' में भक्तिपरक 308 छंद हैं। इस रचना का आधार गरुड़पुराण है। हरिवंश तथा भागवतपुराण की मिश्रित कथा के सहारे इन्होंने 'रुक्मिणीहरण' काव्य की रचना की। शंकरकृत कीर्तनघोषा में ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण तथा भागवतपुराण के विविध प्रसंगों का वर्णन है। वामनपुराण तथा भागवत के प्रसंगों द्वारा 'अनादिपतनं' की रचना हुई। अंजामिलोपाख्यान 426 छंदों की रचना है। 'अमृतमंथन' तथा बलिछलन का निर्माण अष्टम स्कंध की दो कथाओं से हुआ है। 'आदिदशम' कवि की अत्यंत लोकप्रिय रचना है जिसमें कृष्ण की बाललीला के विविध प्रसंग चित्रित हुए हैं। 'कुरुक्षेत्र' तथा 'निमिमनसिद्धसंवाद' और 'गुणमाला' उनकी अन्य रचनाएँ हैं। उत्तरकांड रामायण का छंदोबद्ध अनुवाद उन्होंने किया। विप्रपत्नीप्रसाद, कालिदमनयात्रा, केलिगोपाल, रुक्मिणीहरण नाटक, पारिजात हरण, रामविजय आदि नाटकों का निर्माण शंकरदेव ने किया। असमिया वैष्णवों के पवित्र ग्रंथ 'भक्तिरत्नाकर' की रचना इन्होंने संस्कृत में की। इसमें संप्रदाय के धार्मिक सिद्धांतों का निरूपण हुआ है। वैष्णव भक्ति परंपरा को सशक्त करती हैं इनकी सभी रचनाएँ।

प्रोफेसर इन्दिरा गोस्वामी ने श्रीमंत शंकरदेव के संबंध में लिखा है। "असमिया संस्कृति को उस पराकाष्ठा पर ले जाने में श्रीमंत शंकरदेव की सबसे बड़ी भूमिका रही है। वे मात्र वैष्णव संत ही नहीं, अपितु गीत, संगीत, गायन, वादन, नृत्य, नाटक, अभिनय, चित्रकारी आदि विभिन्न ललित कलाओं के अनुपम शिल्पी भी थे। उन्होंने पाखंड, कर्मकांड, अंधविश्वास, जातिभेद, बलि प्रथा, और वामाचार में खोये असमवासियों में धर्म कि वास्तविक शुचिता, सहजता, करुणा आदि मानवीय गुणों से नव चेतना विकसित करने का क्रांतिकारी कार्य किया। श्री शंकरदेव द्वारा असमिया समाज में की गयी सामाजिक क्रांति के लिए उन्हें कई बार सामाजिक एवं राजकीय प्रताड़नाएं भी सहनी पड़ीं। फिर भी वे जीवन के अंतिम क्षण तक लोककल्याण और रचनाकार्य में रत रहे।"[9] महापुरुष शंकरदेव ने ब्राह्मणों की पारंपरिक रूढ़िवादिता का अपनी प्रगतिशील विचारधारा से विरोध किया। ऐसे समय में जब मनुष्य सिर्फ जन्म से ऊंचा या निम्न श्रेणी का माना जाता था, सामंती विचारधारा के राजा की सामान्य जनता के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी, ऐसे समय में महापुरुष शंकरदेव का यह साहसी कदम काफी महत्वपूर्ण था। उनकी रचनाएं इस बात को प्रमाणित करती है कि समाज के सभी वर्ग के लोगों को एक सूत्र में जोड़ने का उनका महान उद्देश्य था।

संदर्भ:-

1. लोहित के मानस पुत्र शंकरदेव, सांवरमल सांगानेरिया, हेरिटेज पब्लिकेशंस, गुवाहाटी, 2011, पृ. 458

2. वही, पृ. 12

3. वही, पृ. 338

4. वही, पृ. 11

5. वही, पृ. 103

6. अरुण यह मधुमय देश हमारा, जयशंकर प्रसाद, कविता कोश

7. जागो रे, रवीन्द्रनाथ टैगोर, दिव्य नर्मदा

8. लोहित के मानस पुत्र शंकरदेव, सांवरमल सांगानेरिया, हेरिटेज पब्लिकेशंस, गुवाहाटी, 2011, पृ. 372

9. वही, प्रोफेसर इन्दिरा गोस्वामी द्वारा लिखित भूमिका से।

ईमेल - sunilbhu50@gmail.com

skshaw@nehu.ac.in